सितंबर १९९६ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

उद्‌बोधन

क्रोध का त्याग

ऐ मेरे मन!

कितना समय बीत गया पर अब तक भी तेरा कुलबुलाना नहीं मिटा। तेरे भीतर क्रोध के अंगारे अब तक भी सुलग रहे हैं। अरे अबोध। इन अंगारों में तू किस कदर जल रहा है। कितना संतापित है तू इस जलन से। फिर भी, कितना दुर्बोध है रे तू। अपने भीतर धीरे-धीरे इस आग को सुलगाए ही जा रहा है जब तक इसे शांत करने का कोई उपाय नहीं करेगा, तब तक तो यह आग अपने स्वभाव से शनैः शनैः बढ़ती ही जायगी। किसी ने ठीक ही तो कहा है:-

सिने सिप्पं सिने धनं सिने पब्बतमारूहं।
सिने कामस्स कोधस्स इमे पञ्च सिने सिने॥

-शनैः शनैः ही शिल्पज्ञान बढ़ता है। शनैः शनैः ही धन बढ़ता है। शनैः शनैः ही पर्वतारोहण होता है। शनैः शनैः ही काम और क्रोध बढ़ता है। यह पांचों शनैः शनैः ही बढ़ते हैं।

जैसे आग स्वयं अपने लिए नया-नया जलावन लेकर शनैः शनैः बढ़ती ही रहती है, वैसे ही स्वयमेव बढ़ते रहना इस क्रोध का सहज स्वभाव है।

अप्पो हुत्वा बहु होति वड्ढते सो अखन्तिजो।

-वह जो अशांति से उत्पन्न होने वाला क्रोध है, वह थोड़े से बढ़ता हुआ बहुत ही होते रहता है।

आसङ्गी बहुपायासो तस्मा कोधं न रोचये।

-इसका संग बहुत दुखदायी है। ऐसा अनर्थकारी, पापी क्रोध किस समझदार को रुचिकर हो सकता है भला? परंतु तेरे जैसे नासमझ इसे बढ़ाने में ही लगे रहते हैं। वे समझ ही नहीं पाते कि इसका कितना बड़ा दुष्परिणाम होने वाला है।

वाणिजानं यथा नावा अप्पमाणभरा गरु।
अतिभारं समादाय अण्णवे अवसीदति॥
एवमेव नरो पापं थोक थोकम्पि आचिनं।
अतिभारं समादाय निरये अवसीदति॥

-जैसे किसी बनिए की थोड़े भार वाली नाव में अत्यधिक भार भर दिये जाने पर वह समुद्र में डूब जाती है, वैसे ही थोड़ा-थोड़ा पाप-भार बढ़ाता हुआ नासमझ व्यक्ति अतिभार के कारण दुर्गतियों में डूब जाता है।

चाहिए तो यह कि जिस प्रकार कोई सुनार धीरे-धीरे चांदी का थोड़ा-थोड़ा मैल दूर करता है, वैसे ही समझदार आदमी सत्प्रयत्न द्वारा क्षण प्रतिक्षण अपने मन का थोड़ा-थोड़ा मैल दूर करे। उसे द्वेषहीन बनाए, क्रोधहीन बनाए, पापहीन बनाए -

अनुपुब्बेन मेधावी थोक थोकं खणे खणे।
कम्मारो रजतस्सेव निद्धमे मलमत्तनो॥

परंतु तू तो इतना नासमझ है कि अपने मैल को शनैः शनैः कम करने के बजाय उसे शनैः शनैः बढ़ाए ही जा रहा है और परिणाम स्वरूप इस आग से अपने आपको संतप्त ही किए जा रहा है। यह जो आग तेरे भीतर उत्पन्न हुई है, वह अन्य किसी को जलाए या न जलाए, तुझे तो अवश्य जलायेगी ही।

कट्ठस्मिं मत्थमानस्मिं पावको नाम जायति।
तमेव कट्ठं डहति यस्मा सो जायते गिनि॥

-जिस प्रकार किसी काठ में पारस्परिक रगड़ द्वारा उत्पन्न हुई आग उसी काठ को जलाती है, वैसे ही तेरे भीतर किसी के भी रगड़ से उत्पन्न हुई यह क्रोधाग्नि तुझे ही जला रही है।

किसी मूर्ख, अजान, अबोध से तेरी ऐसी रगड़-झगड़ हो गयी कि उसके परिणाम स्वरूप तेरे भीतर यह क्रोध की अग्नि जागृत हो गयी। पर तू भी तो कम अबोध नहीं कि इस आग में अब तक जले ही जा रहा है। -

एवं मन्दस्स पोसस्स बालस्स अविजानतो।
सारम्भा जायते कोधो सोपि तेनेव डह्यति॥

चाहे जिस मंद-बुद्धि अबोध व्यक्ति के रगड़ से तेरे भीतर आग जल उठी हो, परंतु आग तो आग है और उसका स्वभाव है कि जहां उत्पन्न होती है, उसी को जलाती है। जिसकी रगड़ से यह आग लगी, वह जले या न जले, परंतु तू तो इस आग से जले ही जा रहा है।

जिसकी रगड़ से तेरे भीतर यह आग लगी है वह दुर्बोध हो, अज्ञानी हो अथवा कोई श्रमण हो, ज्ञानी हो, इससे क्या अंतर पड़ता है? यदि इस आग से तू जल उठा है तो तुझे तो यह आग संतापित करेगी ही। नीम की लकड़ी की रगड़ लगी हो अथवा चंदन की लकड़ी की, यदि उस रगड़ से किसी काठ में आग उत्पन्न हो गयी तो वह आग उस काठ को जलायेगी ही। जलाना ही उसका धर्म है। आग चाहे कोयले की हो अथवा पेट्रोल की हो, विद्युत की हो अथवा गैस की हो, आग तो आग है; जलायेगी ही। अतः समझदार आदमी सदैव इस बात से सतर्क रहता है कि आग चाहे जिस स्रोत से उत्पन्न हुई हो, उसे बढ़ने न दे।

सुत्वा रुसितो बहुं वाचं समणानं वा पुथुजनानं।
फरुसेन ने न पटिवज्जा न हि सन्तो पटिसेनिं करोन्ति॥

-समझदार शांत-चित्त व्यक्ति किसी श्रमण से अथवा किसी मूढ़ अज्ञानी व्यक्ति से अनेक दूषित वचन सुन कर भी बदले में स्वयं कभी कटु-कठोर वचन का प्रयोग नहीं करता। स्वयं क्रुद्ध होकर उसका प्रतिकार नहीं करता। क्योंकि वह जानता है कि ऐसा करते ही वह स्वयं अपने भीतर आग जला लेगा और उस दुर्भाषी व्यक्ति के क्रोध की आग में नया पेट्रोल छिडक देगा। अपने और पराए भले को समझने वाला न स्वयं अपनी ओर से कड़वे वचन बोल कर नयी आग लगाता है, और न ही किसी और के कड़वे वचन सुन कर उसे कड़वा प्रत्युतर देता है और उसकी आग को भड़काता है।

मावोच फरुसं कञ्चि वुत्ता पटिवदेय्युं तं।
दुक्खा हि सारम्भकथा पटिदण्डा फुसेय्युं तं॥

–इसीलिए समझदार आदमी कभी कोई कड़वी वाणी न बोले। क्योंकि सुनने वाला क्रुद्ध होकर बदले में कड़वी वाणी ही बोलेगा। क्रोधभरा हर वचन दुख ही पैदा करेगा। ऐसे वचनों का प्रयोग करने वाले हमेशा दुखी होंगे।

यो कोपनेय्ये न करोति कोपं, न कुज्झति सप्पुरिसो कदाचि।
कुद्धोपि सो नाविकरोति कोपं, तं वे नरं समणमाहु लोके॥

–सत्पुरुष कभी किसी पर क्रोध नहीं करता। वह तो किसी कोपभाजन पर भी क्रोध नहीं करता। क्रुद्ध हो जाय तो भी क्रोध प्रकट नहीं करता। ऐसा संयमित सत्पुरुष ही तो दुनिया में सच्चा संत कहलाता है। सचमुच समझदार के लिए क्रोध किसी भी अवस्था में उचित नहीं है।

अलसो गिही कामभोगी न साधु, असञ्ञतो पब्बजितो न साधु।
राजा न साधु अनिसम्मकारी, यो पण्डितो कोधनो तं न साधु॥

– आलसी कामभोगी गृहस्थ अच्छा नहीं होता। न ही संयमविहीन गृहत्यागी प्रव्रजित। बिना सोचे समझे निर्णय करने वाला शासक अच्छा नहीं होता और न ही क्रोधयुक्त ज्ञानी पंडित व्यक्ति। कोई सचमुच ज्ञानी होगा तो वह क्रोध का गुलाम होगा ही नहीं।

समझदार व्यक्ति सदा अपनी सही सुरक्षा करता है। वह अपनी सुरक्षा में ही औरों की भी सुरक्षा देखता है। समझदार व्यक्ति सदा औरों की सही सुरक्षा करता है। वह औरों की सुरक्षा में ही अपनी भी सुरक्षा देखता है।

अत्तानं रक्खन्तो परं रक्खति, परं रक्खन्तो अत्तानं रक्खति।

–वह अपनी रक्षा करता हुआ औरों की रक्षा करता है। औरों की रक्षा करता हुआ अपनी रक्षा करता है। सचमुच, जो स्वयं क्रोध की पहल नहीं करता और किसी क्रोधी के पहल कर लेने पर प्रतिक्रिया स्वरूप भी क्रोध नहीं करता, ऐसा व्यक्ति ही तो अपनी और परायी सब की सही सुरक्षा करता है। ऐसा व्यक्ति ही तो सही माने में सत्पुरुष है।

उभिन्न-मत्थं चरति अत्तनो च परस्स च।
परं सङ्कुपितं ञत्वा यो सतो उपसम्मति॥

–अपने और पराये भले के लिए ही सत्पुरुष दूसरे को कुपित हुआ देख कर स्वयं शांति धारण करता है। सचमुच इसी में तो दोनों की भलाई है। कुपित हुए पर कुपित हो जायँ तो अपनी और उसकी दोनों की ही हानि हो।

ऐ मेरे भोले मन! तू जिस धर्म-पथ का पथिक है वह तो क्षांति का पथ है, शांति का पथ है, सहिष्णुता का पथ है, धीरज का पथ है। इस पथ पर चलने वाले सभी पथिक शांति का ही अभ्यास करते आये हैं। मैं जानता हूं कि यह तो अभी संभव नहीं है कि तुझे उन धर्मराज भगवान तथागत की तरह कभी, किसी भी अवस्था में, क्रोध आये ही नहीं, उनकी तरह तेरी भी भृकुटी कभी टेढ़ी हो ही नहीं। परंतु इतना तो अवश्य हो ही सकता है कि जब कभी तुझे क्रोध आये तब तू शीघ्र से शीघ्र उसका शमन कर ले। उसे बढ़ने न दे। बुद्ध बनने के पूर्व उस नर-श्रेष्ठ ने भी तो जन्म जन्मांतरों में यही अभ्यास किया था। भावी-बुद्ध बोधिकुमार ने सर्वथा उकसाने वाली स्थिति में भी इस दुष्ट क्रोध को अपने सिर पर सवार नहीं ही होने दिया। इसका सामना ही किया।

उप्पज्जे मे न मुच्चेय्य न मे मुच्चेय्य जीवतो।
रजं व विपुला वुट्ठि खिप्पमेव निवारये॥

–उठते हुए क्रोध को देखते-देखते भावी बुद्ध को यह होश था कि यह उत्पन्न होगा तो मुझे नहीं छोड़ेगा, जीवन भर बांधे रखेगा। जिस तरह उठती हुई धूल को विपुल वृष्टि द्वारा दबा दिया जाता है, वैसे ही इसका निवारण कर देना चाहिए और यही तो उसने किया भी।

उप्पज्जि मे न मुच्चित्थ न मे मुच्चित्थ जीवतो।
रजं व विपुला वुट्ठि खिप्पमेव निवारयिं॥

–यह क्रोध जैसे ही उत्पन्न हुआ, मैं उसके आधीन नहीं हुआ। अतः यह मुझे जीवन भर अपना गुलाम बनाये न रख सका। जिस प्रकार उठती हुई धूल का निवारण विपुल वर्षा द्वारा हो जाया करता है, वैसे ही मैंने इसका निवारण कर लिया।

यम्हि जाते न पस्सति अजाते साधु पस्सति।
सो मे उप्पज्जि नो मुच्चि कोधो दुम्मेधगोचरो॥

–कैसा अनिष्टकारक है यह क्रोध! इसके न उत्पन्न होने पर ही हम भलीभांति देख समझ सकते हैं। इसके उत्पन्न होने पर तो सारी सूझ-बूझ नष्ट हो जाती है। ऐसे अनर्थकारी के उत्पन्न होने पर मैं इसके आधीन नहीं हुआ। सचमुच क्रोध तो मूर्खों की ही गोचर भूमि है।

यस्मिं च जायमानम्हि सदत्थं नावबुज्झति।
सो मे उप्पज्जि नो मुच्चि कोधो दुम्मेधगोचरो॥

–जिसके उत्पन्न होने पर आदमी की सारी सद्बुद्धि नष्ट हो जाती है और वह स्वयं अपना भला-बुरा भी नहीं समझ सकता, ऐसा दुष्ट क्रोध मुझमें उत्पन्न हुआ, परंतु मैं उसके वशीभूत नहीं हुआ। अहो, क्रोध तो मूर्खों की ही गोचरभूमि है।

येन जातेन नन्दन्ति अमित्ता दुक्खमेसिनो।
सो मे उप्पज्जि नो मुच्चि कोधो दुम्मेधगोचरो॥

–जब मुझमें क्रोध जागता है तो मेरे वे दुश्मन जो मेरा अनिष्ट चाहते हैं, जो मुझे दुखी देखना चाहते हैं, उनकी इच्छा पूरी होती है, वे ऐसा देख कर प्रसन्न ही होते हैं। क्योंकि क्रोध को जन्म देकर मैं अपने दुःखों को ही जन्म देता हूं। इसीलिए मुझे क्रोधान्वित देख कर वे प्रसन्न ही होते हैं। ऐसा दुखदायी क्रोध मुझमें उत्पन्न हुआ, परंतु मैंने उसका तुरंत शमन कर दिया। मैं उसका गुलाम न बन सका। अहो, क्रोध तो मूर्खों की ही गोचर भूमि है।

येनाभिभूतो कुसलं जहाति परक्कमे विपुलं चा पि अत्थं।
स भीमसेनो बलवा पमद्दी कोधो महाराज न मे अमुच्चथ॥

–जिसके वशीभूत होकर आदमी अपना कुशल खो देता है। बड़े से बड़ा लाभ गँवा देता है। हे महाराज! बड़े बड़ों का मर्दन कर देने वाला ऐसा भयावह बलशाली वह क्रोध मुझे अपने बंधन में न बांध सका। अहो, महा अनर्थकारी क्रोध का गुलाम होने से मैं बच

गया। इस विजय की खुशी में भावी-बुद्ध बोधिकुमार प्रसन्न हो उठा।

ऐ मेरे बावरे मन! तू भी उसी संत के पावन पथ का अनुगामी बन। जीत, अपने उठते हुए क्रोध को जीत। इसे बढ़ने न दे। इसके वशीभूत न हो। नहीं तो यह तेरे भीतर ऐसा द्वेष-दौर्मनस्य भर देगा जो कि जीवन भर तुझ पर छाया रहेगा। जीवन भर तुझे दुखी बनाता रहेगा। इसके पहले कि यह तुझे पछाड़ दे और सदा-सदा के लिए तुझे अपने वश में कर ले, शीघ्र इसके चंगुल से निकल, इसका गुलाम होने से बच। दौर्मनस्य के इस उठते हुए गर्द-गुब्बार पर प्रीति-प्यार की माधुरी वर्षा कर, मंगल-मैत्री की विपुल बौछार कर और इसका शमन कर! शमन कर! शमन कर! ताकि तू भी प्रसन्नतापूर्वक कह सके

सो मे उप्पज्जि नो मुच्चि कोधो दुम्मेधगोचरो।

– वह दुष्ट क्रोध मुझमें उत्पन्न तो हुआ, पर मुझे अपने वशीभूत न कर सका। वशीभूत न कर सका। क्रोध तो मूर्खों की ही गोचरभूमि है।

धम्मपथिक,
सत्यनारायण गोयन्का
(नये साधकों के लाभार्थ वर्ष ३, अंक १० का पुनर्मुद्रण)

२० दिवसीय साधकों के उद्गार

अहमदनगर की कु. वर्षा देसाई लिखती है, "मैं मेरी छोटी-सी उम्र में आए हुए उन सारे दुखों को 'धन्यवाद' देना चाहती हूं जिनके कारण मैं आपके संपर्क में आई और विपश्यना विद्या पाकर मेरे दुखों के बाहर आने के प्रयत्न कर सकी। मैं अभी दुखियारी हूं, लेकिन अब 'सचियारी' बनने का प्रयास जारी है। मेरे परिवार के सारे सदस्य १९८६ से साधना कर रहे हैं।

धम्मगिरि की पावन तपोभूमि पर हाल ही में (मार्च-एप्रिल) संपन्न हुए २० दिवसीय शिविर में मुझे तथा मेरे माता-पिता को समवेत शामिल होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। तीनों का ही यह शिविर बहुत सफल रहा और अनुभव लगभग एक समान रहे। शील का कड़ाई से पालन करने में कोई अड़चन नहीं आई, हालांकि इसका अधिकतर श्रेय धम्मगिरि का शुद्ध वातावरण एवं वहां के स्वानुशासन को देना होगा। साधना के दौरान आलस्य, व्याकुलता और उखड़ते हुए विकारों का सामना करना ही था, लेकिन आपके प्रवचनों में 'मार' के आक्रमण के बारे में पहले से ही सचेत कर देने के कारण हानि बहुत कम हुई। विपश्यना के समय बीच-बीच में आनापान का सहारा फायदेमंद रहा। शाम के धर्म-प्रवचन प्रतिदिन साधना के प्रति निष्ठा और श्रद्धा बढ़ाते ही गये। निरंतरता के कारण अनित्यबोध, दुख-बोध और अनात्म-बोध जागे और पुष्ट हुए और ममत्व भाव कम हुआ।

दो चार मोटी-मोटी बातें जो पहले भी थोड़ी-बहुत समझ में आई थीं, अब अनुभूति के स्तर पर अधिक स्पष्ट हुई।

(१) मेरे दुखों का कारण सिर्फ "मैं" ही हूं और सौ प्रतिशत मेरे अंदर के विकार ही हैं। उसके लिए कोई भी बाहर की घटना, स्थिति या व्यक्ति जिम्मेदार नहीं।

(२) संवेदना मात्र दुख ही है, चाहे वह दुखद हो, सुखद हो या अन्य किसी प्रकार की। और जब-जब इन संवेदनाओं को मेरी ही अंधी संज्ञा के कारण 'अच्छा' या 'बुरा' मान कर मैं राग या द्वेष की प्रतिक्रिया करती हूं, तभी दुखी हो जाती हूं।

(३) मेरा दुख सिर्फ "मैं" ही इस साधना द्वारा दूर कर सकती हूं, यह काम कोई और मेरे लिए नहीं कर सकता।

(४) भौतिक शरीर और चित्त के बारे में सच्चाई यही है कि ये प्रतिक्षण बदल रहे हैं और संवेदना के स्वरूप में प्रकट हो रहे हैं। उनके प्रति सजग होकर, उनके अनित्य स्वरूप को जान कर अगर मैं लगातार समता में रहती हूं तो मेरी चित्त-शुद्धि होकर मुक्ति का मार्ग खुल सकता है।

बीस दिन तक धम्मगिरि पर रहते हुए यहां के सौहाद्रमय वातावरण, भोजन-निवास का उत्तम प्रबंध और अन्य सुविधाओं को जिन उदार दाताओं ने उपलब्ध कराया है, उनके प्रति मन कृतज्ञा से भर आता है। व० स० आचार्य का मार्गदर्शन और धम्मसेवकों की अथक सेवा बहुत ही उपकारक रही। धन्य हैं भगवान बुद्ध, धन्य है शील, समाधि और प्रज्ञा से युक्त शुद्ध धर्म, और धन्य हैं आप और वे सारे लोग जिनके कारण यह विद्या हमें प्राप्त हुई। उन सब को हमारा त्रिबार नमस्कार।

सब का मंगल हो!"

प्रश्नोत्तर

प्रश्न – कभी-कभी शिक्षक होने के नाते राग को बढ़ाना पड़ता है और द्वेष को भी। क्रोध भी करना पड़ता है।

उत्तर – उन्हीं के कल्याण के लिए ही क्रोध आया। हम तो सिखा रहे हैं एक अच्छी बात और वह बच्चा सीख ही नहीं रहा है। हमें क्रोध आया, दो चांटे भी लगाये – ठीक रास्ते चलो। यह रास्ता अच्छा है। लेकिन अगर विपश्यना नहीं कर रहे हो तो देखोगे कि यह करते हुए हमने जो क्रोध जगाया तो अपने आप को दुखी बनाया और उस क्रोध के साथ जो वाणी हमने कही –भले ही न्यायीकरण तो करते हैं कि हम ऐसा नहीं कहते तो वह समझता ही नहीं। लेकिन उस वाणी के साथ जो तरंगें गयीं वे तरंगें उसे कहीं भी समझने लायक नहीं बनायेंगी। वह और भी ज्यादा व्याकुल होकर गलत रास्ते जायगा। तो क्या करें! जब क्रोध करना हो – हम इसे क्रोध नहीं कहते, माने जब कठोरता का व्यवहार करना हो; क्योंकि उस बच्चे को मृदु भाषा बहुत कहकर देख चुके –कुछ भी असर नहीं होता उस पर। कठोरता की ही भाषा समझता है, तो पहले अपने भीतर देखेंगे – अंदर समता है न! क्रोध तो नहीं जाग रहा है न! और इसी बच्चे के प्रति करुणा जाग रही है न! और कोई भाषा समझता ही नहीं है यह, तो बड़ी कठोरता से व्यवहार करेंगे –भले ही हाथ भी उठा लें। भीतर तो करुणा ही करुणा है। यह अंतर आयेगा। कठोरता की जगह कटुता आ जाती है, तो वह अपने लिए भी हानिकारक है, औरों के लिए भी हानिकारक होती है। कठोरता तो हो –बहुत बार जीवन में कठोरता का व्यवहार करना पड़ सकता है, कटुता नहीं आनी चाहिए। यह इस विद्या से सीखेंगे। संवेदना जाग रही है। हमको कुछ करना है, करना है तो भीतर संवेदना क्या है और उस संवेदना से हम नहीं प्रभावित होते। हम तो समता में हैं और यह समझ रहे हैं कि इस व्यक्ति के साथ कठोरता का व्यवहार करना है।